मज़हबों में शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व : ईसाई अवधारणा

डॉ. एम. डी. थॉमस

दुनिया इतनी लम्बी-चौड़ी है कि किसी भी इन्सान द्वारा समूची ज़िन्दगी का अन्दाज़ नहीं किया जा सकता। हर कोई जीवन के किसी एक छोटे-से हिस्से का ही हकदार है। प्राण की विशाल और अटूट श्रृंखला में एक कण बनकर रहना ही सभी जीवों की नियति है। इन्सान भी ज़िन्दगी के सिर्फ एक पहलू से ज्यादा नहीं जानता है। ऐसे में, समूची ज़िन्दगी को समझने का ढोंग रचना सरासर गलतफहमी से बढ़कर और कुछ नहीं है। कहने का मतलब है, ज़िन्दगी के प्रत्येक हिस्से का अपना-अपना दायरा है। अपनी हद में रहकर ज़िन्दगी को जीने में ही किसी भी इन्सान या समुदाय के लिए जायज है।

चलते रहने का नाम है ज़िन्दगी। फिर भी, अकेले चलने से ज़िन्दगी नहीं बनेगी। दूसरों से मिलकर चलना होगा। ज़िन्दगी के दो पहलू होते हैं — व्यक्तिगत और सामूहिक। निजी तौर पर ज़िन्दगी को जीना व्यक्तिगत तरीका है। सांम्मलित रुप से चलना सामूहिक भी । इन दोनों पहलुओं के सन्तुलित ताल-मेल से ही ज़िन्दगी का असली रूप उभरकर आता है। यह बात सही है कि इन्सान अकेले पैदा होता है। लेकिन वह दुकेले समाज से ही पैदा होता है। यह भी सही है कि वह अपनी ज़िन्दगी को खुद जीता है। फिर भी, किसी समुदाय का अंग हुए बिना इन्सान के रूप में उसका जीना-बढ़ना मुनासिब नहीं है। उसे समाज के साथ चलना होगा, समाज से सीखना होगा और समाज के लिए जीना होगा। वह समाज को जितना योगदान देता है, उसी लिहाज से उसकी ज़िन्दगी की कामयाबी और कीमत आँकी जाती है। ज़िन्दगी की यह सामाजिक धारणा जितना व्यक्ति के लिए सही है ठीक उतना समुदायों पर भी लागू होती है। भिन्न-भिन्न वजहों से इन्सान के कतिपय समुदाय बने हैं और बनते रहते हैं। इन समुदायों की सार्थकता मिलकर चलने में है। जीने की समझदारी भी इसी में निहित है। मशहूर गीत *'हम चलेंगे साथ-साथ (3) एक दिन। मन में है विश्वास, पूरा है विश्वास। हम चलेंगे साथ-साथ, एक दिन'* — जीवन की इस नज़रिये को बखूबी ज़ाहिर करता है।

ज़िन्दगी के दो नज़रिये होते हैं। एक नज़रिये के मुताबिक, 'हम एक हैं' और दूसरे नज़रिये के अनुसार 'हम अनेक हैं'। ये दोनों नज़रिये सिक्के के समान एक हकीकत के दो पहलू हैं और आपस में पूरक हैं। दोनों के मेल से ही ज़िन्दगी की पूरी परिभाषा बनती हैं। जगज़ाहिर उक्ति 'विविधता में एकता' इसी बात को निचोड़ के रुप में अभिव्यक्त करती है। इसलिए भारतीय सँस्कृति की खास पहचान के रूप में इस बात को मान्यता मिली है। विविधता के हालात में एक रहना जितना ज़रूरी है, ठीक उतना ही ज़रूरी है एकता के लिए विविध रहना। विविधता में दो बातें पायी जाती हैं — तादाद में एक से ज़्यादा होना और एक-दूसरे में फर्क रखना। अनेक में हरेक दूसरे से अलग है । व्यक्ति हो या समुदाय, आपस में अलग होने का भाव उसमें मौजूद 'फर्क' है। आपस में फर्क रखना नकारात्मक बात नहीं है। फर्क ही अपनी-अपनी वजूद की खासियत है। व्यक्ति और व्यक्ति के बीच तथा समुदाय और समुदाय व बीच मौजूद फर्क के बावजूद अनेकों के दरमियान एक होने का भाव बनाये रखना ही असल में इन्सानी तहज़ीव की अहमियत है।

शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की चर्चा इस पृष्ठभूमि में सार्थक लगती है। मज़बूर होकर कोई किसी को बर्दाश्त करे, यह शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व नहीं है। साथ-साथ रहना या वजूद रखना ही सह-अस्तित्व है। दूसरे शब्दों, में यह ज़िन्दगी को बाँटकर जीने का भाव है। सह-अस्तित्व यदि शांतिपूर्ण नहीं है तो वह असल में अस्तित्व नहीं रखने के बराबर है। मिलकर रहना ही इन्सानियत की असली पहचान है। समाज में बेशमार विविधताएँ हैं। भाषाएँ, जातियाँ, नस्ल, पेशे, विचारधाराएँ, उपासना-पद्धतियाँ, देश, रीति-रिवाज़, वेशभूषाएँ, खान-पान के तरीके, आदि को लेकर भिन्न समुदाय बने हैं। ये सब एक ही विधाता की देन है। ये मानव समाज की सांम्मलित साँस्कृतिक विरासत भी हैं । दुनिया को इन सबकी ज़रूरत है। इनमें कोई बड़ा-छोटा नहीं है। कोई किसी पर हावी हो, कोई किसी को दबाये या किनारा कर दे, यह कदापि इन्साफ़ के मुताबिक नहीं है। 'मिलकर रहना' ही इन्सानी ज़िन्दगी को जीने का असली तरीका है। एक दूसरे के प्रति सद्भाव का होना सह-अस्तित्व की बुनियाद है। समाज के विविध समुदायों में आपसी

सद्भाव बढ़ाने में मज़हबों की भूमिका अहम है। इसलिए मज़हबी परम्पराओं में आपस में सद्भाव का होना तरजीही तौर पर ज़रूरी है।

ईसाई परम्परा में मज़हबी ताल-मेल की अवधारणा ईसा की जीवनी और तालीम के विषय में बाइबिल की उक्तियों से ज़ाहिर होती है। शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की ईसाई अवधारणा आपसी खिलाफत का नहीं होना और एक-दूसरे आस-पास वजूद रखना नहीं है। यह दूसरे के मज़हबों के अनुयायियों के साथ प्यार वा रिश्ता जोड़ने में निहित है ।

ईसाई धर्म 'प्रेम का धर्म' के रुप में जाना जाता है। चाहे खुदा के विषय में हो या इन्सान के, प्रेम ज़िन्दगी की रीढ़ की हड्डी के बराबर है। धार्मिक व्यवहार असल में ईश्वर की पूजा करना नहीं है, बल्कि इन्सान की सेवा करना है। इन्सान के लिए किया जाने वाला छोटा-सा-छोटा काम भी ईश्वर के लिए किये जाने के बराबर है। आपसी रिश्ते की सच्चाई में और आपसी सहभागिता की गहराई में ईसाई नज़रिये के मुताबिक इन्सानी ज़िन्दगी की प्रासंगिकता है। मज़हबी परम्पराओं व बीच जब ऐसे इन्सानी मैत्रीभाव का असर पड़े, तभी मज़हब असलियत की कसौटी पर खरे उतरते हैं ।

ईसा ने इन्सानों के आपसी व्यवहार पर एक स्वर्णिम नियम लागू किया है — 'दूसरों से अपने प्रति जैसा व्यवहार चाहते हो, तुम भी उनके प्रति वैसा ही किया करो' (बाइबिल, नया विधान, मत्ती 7.12, पृ.10) । आपसी लेन-देन की यही बुनियादी नीति है। दूसरों से उम्मीदें रखने का मतलब है — उनके प्रति जिम्मेदारियाँ निभाना। ऐसा ही व्यवहार न्याय के मुताबिक है। अपना फर्ज निभाये बिना हक की माँग करना नाजायज है । सद्भाव और सम्मान का बर्ताव एक दूसरे के प्रति समान रुप से होना चाहिए। मज़हबों समुदायों के आपसी ताल्लुकात के लिए यह नियम बाकायदा स्वर्णिम है।

ईसा की प्रेम सम्बन्धी शिक्षा निचोड़ के रुप में इस प्रकार है — 'जिस प्रकार मैंने तुम लोगों को प्यार किया, तुम भी दूसर को प्यार करो' (बाइबिल, नया विधान, योहन 13.34, पृ.169)। ईसा की दृष्टि में प्यार ही ज़िन्दगी का पर्यायवाची है। उन्होंने प्यार का तरीका खुदा से ही सीखा, जिसे अपने पिता के रूप में महसूस किया करते थे। पिता परमेश्वर उनके लिए आदर्श प्रेमी है। पिता भले और बुरे, दोनों पर अपनी सूर्य उगाता तथा धर्मी और अधर्मी, दोनों पर पानी बरसाता है (बाइबिल, नया विधान, मत्ती 5.45, पृ.8)। ऐसे आदर्श पिता के लायक बेटे के समान ईसा ने प्यार के व्यवहार में पूर्ण सम्भाव की वकालत की। अपनों से सभी प्यार करते हो है। परायों को भी अपना समझना असली प्यार है। दुश्मनों को प्यार करना ईसाइयत की गुणवत्ता को परखने की कसौटी है। किसी को दुश्मन समझना तो महज गलतफहमी है। ऐसी दुनियादारी से ऊपर उठकर सब के साथ प्रेम-भाव का व्यवहार करना ईसा का शिष्य होने को असली पहचान है। ईसा सौ भेड़ों में निन्यान्बे को छोड़कर एक खोये हुए की तलाश में निकलने वाले भले गड़रिये का जीवन्त रुप रहे। निम्न जाति के लोगों और पापियों के साथ उठना-बैठना, खाना-पीना और दोस्ती करना उनके लिए पसन्दीदा काम था। ईसा ने तथाकथित बड़ों, धार्मियों, अच्छों तथा ताकतवरों को डटकर चुनौती दी और कमज़ोरों ताकतहीनों, आवाज़हीनों और हाशिये पर सरकाये हुओं को मज़बूत करने और उन्हें अपने पैरों पर इज्ज़त के साथ खड़ा करवाने की अनूठी बीड़ा उठायी। ऐसी तरजीही प्यार में खुदा का असली रुप निहित है, इस बात को उन्होंने अपनी ज़िन्दगी, मौत और दोबारा जी उठने के घटनाक्रम से साबित किया। ईसाई परम्परा की इमारत ईसा की इस अनोखी ज़िन्दगी की बुनियाद पर खड़ी है। ऐसी प्यार-भरी ज़िन्दगी में ईसाई नज़रिये की अहमियत निहित है। आपसी सह-अस्तित्व की ईसाई अवधारणा मानव समाज के विविध समुदायों में, खास तौर पर मज़हबी समुदायों में, प्यार के ऐसे बहु-आयामी रुप में दर्शायी गयी है। ज़ाहिर है, यह धारणा इन्सानी समाज को एक नयी दिशा प्रदान कर सकती है।

ईसा की उपर्युक्त स्वर्णिम नियम की व्याख्या पौलुस नामक शिष्य ने इन्सान के 'शरीर' की मिसाल लेकर की है। उनका कहना है कि शरीर के बहुत-से अंग होते हैं, लेकिन शरीर एक है। (बाइबिल, नया विधान, कुरिंथियों के नाम पौलुस का पहला पत्र 12.12-13, पृ. 265-6)। अंग शरीर नहीं है, बल्कि सिर्फ अंग है। अनेक अंग एक ही अंग की बहुतायत नहीं है, वरन् अलग-अलग अंग हैं। अंगों के भिन्न-भिन्न रुप है, आकार है, स्वभाव है, जगह है और भूमिका है। उनमें मौजूद फर्क ही उसकी अपनी-

अपनी खासियत है। शरीर में एक ही अंग होता तो शरीर कहाँ होता ! सभी अंग मिलकर शरीर बनते हैं। शरीर का कोई एक अंग दूसरे से कह नहीं सकता कि मुझे तुम्हारी ज़रूरत नहीं। शरीर के किसी एक अंग की जीत या खुशी सभी अंगों की जीत या खुशो है। ठीक उसी प्रकार शरीर का किसी एक अंग में होने वाला दर्द सभी अंगों में महसूस होता है। शरीर का कोई भी अंग बड़ा या छोटा नहीं है। सभी अंग बराबर आदर के पात्र हैं। शरीर का कोई भी अंग कमज़ोर नहीं है। यदि कोई अंग अपने आपको दूसर से ज़्यादा ताकतवर समझता है, तो उसका फर्ज है, जो कमज़ोर समझा जाता है उसके लिए सहारा बनना। अंगों को एक दूसरे की सेवा करनी चाहिए। अंगों की विविधता से शरीर की गतिविधियाँ सुचारू रूप से चलती है। शरीर की एकता से अंगों की प्रासांगिकता भी बनी रहती है।

पौलुस द्वारा प्रस्तुत 'एक शरीर और अनेक अंग' वाली मिसाल ईसाई जीवनदर्शन की निचोड़ है। सम्पूर्ण सृष्टि के भीतर तालमेल और सन्तुलन का बुनियादी नज़रिया उपर्युक्त मिसाल में मौजूद है। समाज के भिन्न इकाइयों में आपस में ऐसा सद्भाव कायम रहना चाहिए। समाज के विविध समुदाय, खास तौर पर मज़हबी परम्पराएँ, एक दूसरे को दुश्मन की निगाहों से न देखा करें। वे खुदगर्जी और फिरकापरस्ती से ऊपर उठकर आपस में प्यार-मुहब्बत का रिश्ता जोड़े और हम की भावना बनाये रखे। वे एक-दूसरे का सम्मान करे और एक दूसरे की हिफाजत करें। 'बड़ा-छोटा' का भाव छोड़कर वे आपस में बराबरी और दोस्ती का भाव कायम रखे। सभी समुदायों को अपनी-अपनी हद में रहना चाहिए। दूसरे का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। आपस में पूरक होने की हकीकत को स्वीकारते हुए उन्हें एक-दूसरे से सीखना चाहिए और अपने आपको समद्ध करना चाहिए। विविध समुदायों को साथ-साथ चलने की आध्यात्मिक तहज़ीब को विकसित करना चाहिए। 'विविधता में एकता' और 'वसुधैवकुटुम्बकम्' का यही मलतब है। अपने-अपने भीतर आपसी सहयोग की भावना को जगाकर उन्हें एक-दूसरे के साथ कदम में कदम मिलाकर खुदा की ओर एक सांम्मलित तीर्थयात्रा के रूप में ज़िन्दगी को तय करना चाहिए। उन्हें 'जीओ और जीने दो' से बढ़कर 'जीने की मदद करो' के नज़रिये पर अमल करना चाहिए। कमज़ोर, आवाज़हीनों और हाशिये पर सरकाये हुओं की ओर तरज़ीही तौर पर प्रतिबद्धता होनी चाहिए। इस रूप में 'बेहतर समाज का निर्माण करना' अपने जीवन का मिशन बने, तभी मज़हबी परम्पराओं की सार्थकता, खास तौर पर वर्तमान संदर्भ में, बुलन्द होती है। शिक्षा-दीक्षा भी ऐसे मिशन में चरितार्थ होती है।

विविध मज़हबों के सार्वभौम मूल्यों की रोशनी में इन्सानियत निखरती जायें, इन्सानी समाज गुणवत्ता और विकास की बुलन्दियाँ छूएँ, भारत के सभी मज़हब इस उदात्त मिशन में एकजुट हो जायें और भारतीय और विश्व समाज ज़्यादा जीने लायक बन जायें, लेखक की यही मंगल कामनाएँ हैं।

डॉ. एम. डी. थॉमस
संस्थापक निदेशक, इंस्टिट्यूट ऑफ़ हार्मनि एण्ड पीस स्टडीज़, नयी दिल्ली
प्रथम मंजिल, ए 128, सेक्टर 19, सेक्टर 19, द्वारका, नयी दिल्ली 110075

दूरभाष: 09810535378 (p), 08847925378 (p), 011-45575378 (o)
ईमेल : mdthomas53@gmail.com (p), ihps2014@gmail.com (o)
बेबसाइट: www.mdthomas.in (p), www.ihpsindia.org (o)

Twitter: https://twitter.com/mdthomas53
Facebook: https://www.facebook.com/mdthomas53
Academia.edu: https://independent.academia.edu/MDTHOMAS